पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा ४, ५,
प्रवचन नंबर १३२, ता. ०२-०७-१९८९ Version 1

श्री समयसार परमागम शास्त्र, उसका प्रथम जीव नाम का अधिकार, गाथा-३। उसका भावार्थ।

निश्चय से सर्व पदार्थ अपने अपने स्वभाव में स्थित रहते हुए ही शोभा पाते हैं। परंतु जीव नामक पदार्थ की अनादि काल से पुद्गलकर्म के साथ निमित्तरूप बंध-अवस्था है; उससे इस जीव में विसंवाद खड़ा होता है। झगड़ा, दुःखदायक स्थिति खड़ी होती है। **अतः वह शोभा को प्राप्त नहीं होता।** जीव। दूसरे के साथ सम्बन्ध होता है उसमें जीव का बिल्कुल हित नहीं है। अहित होता है, ऐसा। **इसलिये वास्तव में विचार किया जाये तो एकत्व ही सुन्दर है; उससे यह जीव शोभा को प्राप्त होता है।** यहाँ छहों द्रव्य की बात की थी। छहों द्रव्य एकपने में रहें तो शोभा पाते हैं। द्रव्य-गुण-पर्याय ये सात प्रकार से बात की है। ऊपर जो कहा निश्चय से सर्व पदार्थ, निश्चय से यानि ज्ञेय प्रधान निश्चय है।

अब, उस एकत्व की असुलभता बताते हैं:- गाथा-४

है सर्व श्रुत-परिचित-अनुभूत, कामभोगबंधन की कथा।
पर से जुदा एकत्व की, उपलब्धि केवल सुलभ ना।।४।।

अर्थात् दुर्लभ है।

टीका:- इस समस्त जीवलोक को यानि लोक में रहे हुए जीवों को **कामभोग संबंधी कथा** यानि भाव, करना और भोगना अथवा कर्मचेतना और कर्मफलचेतना, इस संबंधी जो भाव व्यवसाय स्वरुप **एकत्व से विरुद्ध होने से अत्यंत विसंवाद करानेवाली है।** सर्वथा दुःखदायक है। **(आत्मा का अत्यंत अनिष्ट करनेवाली है)** काम और भोग की कथा। भावार्थ में काम का अर्थ किया है। विषयों की इच्छा और भोग यानि उनको, विषयों को भोगना। करना और भोगना मतलब पदार्थ को प्राप्त करने की इच्छा और पदार्थ को भोगने की इच्छा। परपदार्थ को प्राप्त करना और परपदार्थ को भोगना ऐसी जो काम और भोग।

काम का अर्थ यथार्थ में इच्छा होता है। इच्छा अर्थात् विषयों की इच्छा ऐसा कहा, और भोग अर्थात् उनको भोगना, मतलब विषयों को भोगना। वह कथा जीव का अहित करनेवाली है। **तथापि, पहले अनंत बार सुनने में आई है,...** क्या कहा? कि काम और भोग की कथा, कर्तापना और भोगना, कर्ताबुद्धि और भोक्ताबुद्धि वह बात अनंतकाल से पूर्व में उसके सुनने में आई है। आता ज्ञाता है यह बात उसके सुनने में आई नहीं, ऐसा।

करना और भोगना ये बात ही उसके... उसके श्रवण में ये आती रहती है। पहले श्रवण लिया। **अनंतबार परिचय में आई है...** आत्मा को अज्ञानदशा में करना और भोगना, यह उसे परिचित है। आत्मा कर्ता नहीं और भोक्ता नहीं, यह बात अपरिचित है, उसे परिचय में आई नहीं और सुनने में आई

नहीं। **और अनंतबार अनुभव में भी आ चुकी है।** कर्ताबुद्धि और भोक्ताबुद्धि अनंत अनंत अनंतकाल पूर्व, पूर्व की बात करते हैं। भविष्यकाल में यह उसे सुनने में आएगी और परिचय में आएगी और अनुभव में आएगी- ऐसा लिखा नहीं है। पूर्वकाल में ये संस्कार उसे अनादि के हैं, करना और भोगना। आत्मा ज्ञाता है- यह बात सुनी तो नहीं है, उसका परिचय भी किया नहीं और ज्ञान का एकत्व और अनुभव भी किया नहीं।

कैसा है जीव लोक? राग को करना और राग के फल को भोगना। कर्मचेतना और कर्मफलचेतना अनादिकाल की है। यह बात नई नहीं है ऐसा। राग को करना ऐसा उसे अभ्यास और अध्यास है। और दुःख को भोगना ये भी उसे अभ्यास है। राग और राग के फल से भिन्न आत्मा है- यह बात सुनी नहीं है। **कैसा है जीव लोक?** अर्थात् लोक में रहे हुए जीव कैसे हैं? **जो संसाररूपी चक्र के मध्य में स्थित है...,** संसाररूपी चक्र की व्याख्या करते हैं। **निरन्तर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप अनंत परावर्तनों के कारण...** द्रव्य परावर्तन, क्षेत्र परावर्तन, काल परावर्तन, भव और भाव। ओहोहो..!

उस परावर्तन की जब बात सुनते हैं तब ऐसा होता है कि कितना काल व्यतीत हो गया, आहाहा! जैसे कि क्षेत्र परावर्तन की बात हम करें तो लोकाकाश के एक एक प्रदेश पर क्रम क्रम से जन्मा और मरा। फिर, पहले प्रदेश के बाद यदि तीसरे प्रदेश पर आकर जन्मा-मरा हो और रखड़े तो फिर से दूसरे प्रदेश पर आना चाहिए... ओहोहोहो! काल अनंत..अनंत..अनंत.. अनंत..अनंतकाल गया परावर्तन का। ऐसे एक परमाणु, क्षेत्र, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी उसके एक एक समय में जन्मना और मरना क्रम से। क्रम भंग करे तो वापस फिर से चक्कर, फिर से चक्कर..

मुमुक्षुः- वह गिनती में ही नहीं आता।

उत्तरः- गिनती न हो सके, ऐसा समुद्र चला गया, ऐसा कहते हैं। **अनंत परावर्तनों के कारण...,** आहा! एक परावर्तन नहीं, एक अर्धपुद्गल परावर्तन में कितना काल जाय? एक पुद्गल परावर्तन में कितना काल जाय? और अनंत पुद्गल परावर्तन (किये)! **भ्रमण को प्राप्त हुआ है,...** अनंतकाल से चारगति में भटकता है।

समस्त विश्व को एकछत्र राज्य से वश करनेवाला महा मोहरूपी भूत जिसके पास बैल की भांति भार वहन कराता है,... शांति से बैठ सके नहीं। कर्ता-भोक्ता, कर्ता-भोक्ता, करना, ऐसा करना, ऐसा करना, इसके बाद ऐसा करना, इसप्रकार निरंतर जाल, संकल्प और विकल्प की उत्पन्न होती रहती है। **समस्त विश्व को...** एक मोहराजा का राज है, ऐसा कहते हैं। मोहराजा जिसके हृदय में ज्ञान में अज्ञान में आया वह मोह उसे सुख से बैठने देता नहीं। उसके पास बैल की... गुरुदेव तो बैल का उदाहरण देते हैं। ऐसे.. करे, अभ्यस्त होता है... और सिर पर जुआठा (गाड़ी, हल की लकड़ी जो बैल के कंधे पर रहती है) डाले और उसपर पड़े भार। इसप्रकार अज्ञान अंधकार से, मोह से, मूर्छा से असावधान दशा से भूत की भांति मोह को और मोह से **मोह रूपी भूत जिसके पास...** यानि जीव के पास से **बैल की भांति भार वहाँ कराता है; जोर से प्रगट हुए...**

अब दूसरा, **जोर से प्रगट हुए तृष्णारूपी रोग के दाह से जिसको अंतरंग में पीड़ा प्रगट**

हुई है,... शांति नहीं है इसलिए पांच इन्द्रियों के विषय की ओर झुक झुककर उस दुःख को टालना चाहता है। और प्रायः दुःख डबल होता है। ये दुःख को टालने की विधि ही गलत है। क्योंकि भूख की इच्छा हुई तो भोजन कर ले तो उस समय भूख का दुःख टलता है, शांति होती है। इसीप्रकार देखने की, सूंघने की, स्पर्श करने की, अनेक प्रकार की जो दुःखभरी है कल्पना, उसको... देखो आगे कहते हैं।

अब जो इस रोग से दाह हुई है, अंदर आग लगी है, **जिसको अंतरंग में पीड़ा प्रगट हुई है, आकुलित हो होकर मृगजल की भांति विषयग्राम को (इन्द्रियविषयों के समूह को) जिसने घेरा डाल रखा है,...** उसकी शांति के लिए इन्द्रिय के विषय तरफ, इंद्रियज्ञान इन्द्रिय के विषय की तरफ झुकता है और अपनी शांति खोजता है। किन्तु कहीं उसको शांति मिलती नहीं। क्षणिक शांति दिखती है, उसमें भी उसे भ्रान्ति होती है।

मुमुक्षुः- भ्रान्ति होती है।

उत्तरः- वह भ्रान्ति का कारण है उल्टा। **और वह परस्पर आचार्यत्व भी करता है।** लो! यें जीव पूरे अज्ञानी हैं ये परस्पर अचार्यत्व करते हैं, उपदेश देते हैं। एकदम उल्टा रस्ता है। **सुख प्राप्त करते सुख टलता है** आया था न! **सुख प्राप्त करते सुख टलता है, लेश यह लक्ष्य में लहो।**

एक जरा तो तू लक्ष्य में ले कि तू सुख के लिए झपट्टा मारता है चारों तरफ। कमाना, भोगना, मोटर लेनी, बंगला लेना, कपड़े अच्छे, वगैरह अनेक अनेक प्रकार से तू सुख के लिये प्राप्ति (प्रयत्न) करता है परंतु सुख टलता है। सुख आता नहीं है और अतीन्द्रिय सुख टल जाता है। **सुख प्राप्त करते...** इन्द्रियसुख प्राप्त करते सुख टलता है। वास्तविक आत्मिक सुख तुझे मिलता नहीं। "लेश ये लक्ष्य में लो।" ज़रा तो लक्ष्य में ले कि इसमें सुख नहीं है, ऐसा। **परस्पर अचार्यत्व भी करता है।** यह संसार का चित्र देते हैं।

मुमुक्षुः-चित्र देते हैं।

उत्तरः चित्रकारी है संसार की। सावधान करते हैं। देख तू, अब चेत, ऐसा। समयसार तेरे हाथ में आया है। तुझे उपदेशक मिले हैं। सुनानेवाले मिले हमारे जैसे आचार्य। ऐसा। तू हमारी बात को लक्ष्य में ले और ज़रा, भेदज्ञान करके आत्मा के सन्मुख हो। सुखी होना हो तो दूसरा कोई उपाय है नहीं।

परस्पर अचार्यत्व भी करता है। ऐसा। अज्ञानी के पास जो है, वो देता है। कहता है कि यात्रा करो, उदाहरण के लिए, सामायिक बाँधकर बैठ जाओ दो घड़ी, शुद्ध आहार खाओ, समझ गए? छना हुआ पानी पीओ कुँए का, नल का नहीं... वगैरह वगैरह अनेक प्रकार से वो ये उपदेश देते हैं। ऐसा करो तो धर्म होता है, ऐसा करो तो, पुण्य करो तो धर्म होता है। उपवास करो, वर्षीतप करो तो धर्म होता है। आहाहा!

काम भोग की कथा हैं सब। करने का ही उपदेश देता है अज्ञानी। आत्मा कर्ता नहीं है, मात्र ज्ञाता है- यह उपदेश दे सकता नहीं क्योंकि वह जानता नहीं। अज्ञान से अँधा हो गया है। बिलकुल अंध हो गया है। ज्ञानी के और अज्ञानी के उपदेश में बड़ा अंतर है। एक करने का उपदेश देता है।

दूसरा कहता है कि आत्मा जाननहार है, करनेवाला नहीं। यह उपदेश का भी अंतर है बड़ा। एक राग की क्रिया करने का उपदेश देता है, दूसरा कहता है कि वीतराग भाव से धर्म होता है, राग से धर्म नहीं होता। **परस्पर आचार्यत्व भी करता है।** देखो! **(अर्थात् दूसरों से कहकर उसी प्रकार अंगीकार करवाता है)।** स्वयं करता है और दूसरों से करवाता है। जो करते हों, उन्हें अनुमोदन भी देता है। **इसलिए काम भोग की कथा...**, कथा मतलब (उसका) स्वरुप, अनुभव **तो सबके लिए सुलभ है।** आहाहा! बिना प्रयत्न के ये मिलता है, और सच्चा सुख तो प्रयत्न से मिलता है, किन्तु यह सुलभ है, दुर्लभ नहीं है। शुद्ध आत्मा का अनुभव दुर्लभ है। यह तो सुलभ है।

मुमुक्षुः- क्योंकि उस प्रकार का ही अनुभव है, परिचित है इसलिए सुलभ है।

उत्तरः- उसको सुख से (आसानी से) प्राप्त होता रहता है, बिना मेहनत के। और उपदेशक भी ऐसे मिले। जीव नवीन क्या करे? उपदेशक भी ऐसे मिले। जीव क्या नवीन करे? वें जो करते हों, सामायिक करो, प्रतिक्रमण करो, यात्रा करो, चौविहार करो, हरितकाय का त्याग करो आज चौदस है, दृष्टांत के लिए। ऐसे उपदेश! करने का ही उपदेश। त्याग के नाम पर भी कर्ताबुद्धि। आहाहा! बहुत हो तो क्रोध छोड़ो, मान छोड़ो, माया छोड़ो आहाहा! छोड़ो..! समझ गये! जैसे कि ग्रहण किया हो और घुस गया हो आत्मा में क्रोध! आहाहा! क्रोध आत्मा में घुस गया है, इसलिए दुःखी होता है, इसलिए उस क्रोध को छोड़ो तो धर्म होगा।

आत्मा **अपोहक** है। क्रोध के अभाव स्वभाव से आत्मा रहा हुआ है। आहा! त्याग-उपादान शून्यत्व शक्ति है। ग्रहण और त्याग आत्मा के स्वभाव में नहीं है। **किन्तु...** अब कहते हैं कि ये **सुलभ है।** अब, दुर्लभ की बात करते हैं, **किन्तु निर्मल भेदज्ञानरुपी प्रकाश से...,** निर्मल शब्द क्यों प्रयोग किया? शुद्ध आत्मा का जो अनुभव होता है, उसका नाम भेदज्ञान है। राग से भिन्न प्रत्यक्ष शुद्धात्मा का अनुभव होना, उसका नाम निर्मल भेदज्ञान है। निश्चय भेदज्ञान की बात की।

निर्मल भेदज्ञानरुपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देनेवाला... गृहस्थ अवस्था में राग से भिन्न- स्पष्ट, प्रत्यक्ष, राग से मेरा आत्मा भिन्न है- ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव होता है। दुःख से मेरा आत्मा भिन्न है। दुःख के समय दुःख से भिन्नता का एहसास हो जाता है। दुःख टले तो दुःख से भिन्न है- ऐसा नहीं। दुःख से रहित ही है आत्मा। यानि दुःख से रहित है इसलिए दुःख से भिन्न आत्मा की उपलब्धि हो सकती है। ऐसा। राग, द्वेष, सुख-दुःख के परिणाम अभूतार्थ होने से अनुभूति हो सकती है। (वें) भले रहें।

मुमुक्षुः- मेरे में नहीं हैं न!

उत्तरः- मेरे में नहीं हैं, बस। स्वभाव और विभाव का भेदज्ञान मूल है। झलकता है किन्तु वो राग आत्मा में आता नहीं। दुःख झलकता है किन्तु दुःख आत्मा में प्रवेश करता नहीं, आहाहा! स्पष्ट भिन्न, ऐसा। प्रत्यक्ष भिन्न। परोक्ष भिन्न नहीं। अनुभव के काल में प्रत्यक्ष भिन्नता होती है। ऐसा। **निर्मल भेदज्ञानरुपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देनेवाला यह...** यह, **मात्र भिन्न आत्मा का एकत्व ही- जो कि सदा प्रगटरूप से अंतरंग में प्रकाशमान है...** आहाहा! एक शुद्धात्मा चिदानंद आत्मा एक ज्ञायकभाव, सदा भिन्नपने रहा हुआ है, ऐसा। सदा अत्यंत भिन्नपने रहा हुआ, सर्वथा भिन्नपने रहा हुआ

है। राग-द्वेष, सुख-दुःख के साथ कथंचित् भिन्न-अभिन्न- ऐसा प्रकार नहीं है।

मुमुक्षुः- नहीं है। ठीक।

उत्तरः- भेदज्ञान से पहले भी भिन्नता रही हुई है। और भिन्नता का एहसास होना उसका नाम भेदज्ञान सच्चा, निर्मल अनुभूति है। यह आबाल-गोपाल सबको अनुभव में आता है। **अंतरंग में प्रकाशमान है तथापि कषायचक्र के साथ एकरूप जैसा किया जाता है, इसलिए...** अर्थात् मानने में आता होने से। है तो कषाय और भगवान आत्मा भिन्न, किन्तु भेदज्ञान का अभाव है इसलिए जैसे मैं कषायी- रागी हो गया, ऐसे उसके साथ एकत्वपना मानता है। एकरूप जैसा करने में आता है। एकरूप होता नहीं है।

ज्ञान और राग हैं तो भिन्न ही, पर जैसे वें एक अभिन्न ही हों। अभिन्न का कारण भी क्रोध का प्रतिभास है। क्रोध का प्रतिभास देखकर क्रोध जैसे मेरे में हुआ... क्रोध का मात्र प्रतिभास है। और वो प्रतिभास होता है वो भिन्न का प्रतिभास होता है। क्रोध भिन्न है। क्रोध ज्ञान में जानने में आता है उस समय, आहाहा! जिसमें जानने में आता है, वो ज्ञेयाकार ज्ञान की अवस्था तो मेरी है और क्रोध तो ज्ञेय है, भिन्न है, निमित्तभूत ज्ञेय है। आहाहा! तो तो भेदज्ञान हो जाय। किन्तु क्रोध का प्रतिभास देखकर क्रोध मेरे में आ गया...

मुमुक्षुः- वह भ्रान्ति हो गई।

उत्तरः- भ्रान्ति हो गई बस। स्फटिकमणि में लाल फूल की झलकन का प्रतिभास देखकर स्फटिकमणि लाल हो गई। स्फटिकमणि लाल हुई हो और लाल माने तो तो सच्ची बात है। किन्तु लाल हुई नहीं है, लालपना तो फूल में है और स्वच्छता तो स्फटिकमणि की है। इसप्रकार ज्ञान की स्वच्छता है और क्रोध की (झलकन) तो ज्ञेयभूत है, बाहर का पदार्थ है, मलिनभाव। स्वच्छ और मलिन- दो तत्व भिन्न-भिन्न हैं। **एकरूप जैसा किया जाता है, इसलिए...** मतलब मानने में आता होने से, एकपने की मान्यता हो गई है। **अत्यंत तिरोभाव को प्राप्त हुआ है...,** क्या कहते हैं? **जो कि सदा प्रगटरूप से अंतरंग में प्रकाशमान है तथापि...,** जो भगवान आत्मा साक्षात हाज़िर है तो भी, उसके ऊपर लक्ष्य नहीं है और कषाय के ऊपर लक्ष्य है। इसलिए कषाय के लक्ष्य से जैसे मैं कषायी हो गया, दुःखी हो गया, रागी हो गया, मनुष्य हो गया, ऐसे अनंतकाल से स्व और पर (के) भेदज्ञान के अभाव से एकता करता है। एकता करता होने से **अत्यंत तिरोभाव को प्राप्त हुआ है...** अभाव नहीं हुआ है।

मुमुक्षुः- तिरोभाव।

उत्तरः- है तो भगवान आत्मा वर्तमान मौजूद, उसका लक्ष्य क्रोध पर है तब भी। पर वह प्रगट तिरोभाव को प्राप्त हुआ है। आच्छादित हो गया है। दृष्टि में आता नहीं, ओझल। है फिर भी दिखता नहीं। समुद्र के किनारे एक तिनका मात्र आँख में आड़े आया (तो) पूरा समुद्र तिरोभूत हो गया। दिखता नहीं। दिखता नहीं इसलिए समुद्र नहीं है ऐसा नहीं, है। तिरोभूत मतलब वह वस्तु होने पर भी उसकी नजर में आती नहीं, उसका नाम तिरोभूत हो गया।

अनुभव हो तो आविर्भाव हो। तिरोभूत और आविर्भाव, वह ज्ञान की पर्याय का विशेषण है। भगवान आत्मा तिरोभाव हुआ (था) और (अब) आविर्भाव हुआ, ऐसा नहीं है। जानने में नहीं आता था,

उसका नाम तिरोभाव और जानने में आया तो आविर्भाव। बस इतना ही है। **अत्यंत तिरोभाव को प्राप्त हुआ है, (ढक रहा है)...**

आत्मा का स्वरुप दिखता नहीं, होने पर भी दिखता नहीं। **वह...**, अब दो कारण देते हैं। वह सदा अंतरंग में प्रगट है भगवान आत्मा (फिर भी) दिखता नहीं, तिरोभूत हो गया है। उसके दो कारण देते हैं। एक निश्चय कारण और दूसरा व्यवहार कारण। निश्चय कारण क्या है? **वह- अपने में अनात्मज्ञता होने से...** अर्थात् अनात्मा को आत्मा मानने की भूल स्वयं करता है। वह क्षणिक उपादान की भूल स्वयं की है। वह निश्चय कारण है। और आत्मज्ञानी गुरु की संगति नहीं की- वह व्यवहार कारण है, दूसरा कारण। **(स्वयं आत्मा को न जानने से)... अपने में अनात्मज्ञता होने से...** अर्थात् आत्मा होने पर भी उसके प्रति लक्ष्य नहीं करने से, मतलब उसे निग्लेक्ट करने से।

(स्वयं आत्मा को न जानने से)... इतना अर्थ किया। **अनात्मज्ञता** ऐसा। अन-आत्मज्ञता। **(स्वयं आत्मा को न जानने से)...,** स्वयं स्वयं को नहीं जानने से- ये निश्चयकारण। एक समय की पर्याय की भूल। उसकी योग्यता। अज्ञान की उत्पत्ति किसी कर्म के उदय से नहीं हुई। स्वयं स्वयं को भूलता है।

मुमुक्षुः- अपने को भूल कर हैरान हो गया।

उत्तरः- वह आप कव्वाली में (गाते हो) शुरुआत में आता है। बहुत अच्छा आता है।

मुमुक्षुः- भूला है स्वयं आत्मा को...

उत्तरः- हें.. स्वयं आत्मा को.. वह ये। भूला है स्वयं आत्मा को। स्वयं अपने को भूल गया बस। उसकी भूल किसी दूसरे ने करवाई नहीं है किसी ने। वह मूल कारण है ये।

और अब, अब निमित्त की प्रधानता से बात करते हैं। **और अन्य आत्मा को जाननेवालों की संगति-सेवा न करने से,...** अब जो आत्मानुभवी पुरुष हैं, उनके समागम का यदि योग हो जाय, तो तो वें उसको स्वरुप का कुछ ख्याल देवें। स्वयं स्वयं से अज्ञान है और जो ज्ञानी हैं उनके पास जाता नहीं। उनकी बात सुनता नहीं, देशनालब्धि सुनता नहीं। दो कारण हैं। एक मूल कारण और दूसरा उत्तर कारण। मूल कारण यानि पर्याय की योग्यता।

और अन्य आत्मा को जाननेवालों की... आत्मा को जाननेवालों की **संगति**- समागम, **सेवा न करने से,...** सेवा का अर्थ समागम नहीं (किया), उसका नाम सेवा नहीं की। सेवा नहीं की (का) मतलब पैर दबाता नहीं, ऐसा नहीं। उनके संग में ही आता नहीं। उनसे दूर ही वर्तता है। समवशरण हो न, समवशरण भगवान का, उसमें भी कितने नहीं जाते। उसके घर के कुटुंब के पाँच जाएँ और पाँच कहें (कि) हमे नहीं आना। बोलो! स्वयं स्वयं से आत्मज्ञान नहीं किया और तीर्थंकर का समोशरण आया उसमें भी नहीं गया। वक्रता की है न अनंतकाल से।

संगति-सेवा न करने से, न तो पहले..., आहाहा! **कभी सुना है,...** पर तीर्थंकर की सभा में गया था न! रुचिपूर्वक सुना नहीं। इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया। विषय सेवन करने गया था वह, विषय का सेवन करने गया था। श्रोत्र इंद्रिय का जो विषय है, शब्द की पर्याय, जैसे कि कोई भजन, कीर्तन कोई... दृष्टांत के तौर पर सिनेमा का आये... क्या कहते हैं उसे? गाना। वो सुनता है

न, वह विषय का सेवन किया उसने। ऐसे इस तीर्थंकर की सभा में इसने (कर्णेन्द्रिय का) पोषण किया। इन्द्रियज्ञान का पोषण करने गया था वह। अच्छा लगे.. सुहाना लगे.., वहाँ का अतिशय इसप्रकार का.. शांति लगे.., समझ गए? इन्द्रिय के विषय का पोषण किया उसने।

इस इन्द्रियज्ञान से सुनना मेरा स्वभाव नहीं है- ये ख्याल में नहीं आया। मेरे कान नहीं हैं और भाव इन्द्रिय का भी मेरे में अभाव है। इसलिए भाव इन्द्रिय द्वारा मैं द्रव्यश्रुत को सुनूँ- यह मेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा! कान नहीं हैं इसलिए सुनता नहीं, आँख नहीं हैं इसलिए देखता नहीं, नाक नहीं है इसलिए सूंघता नहीं, जीभ नहीं है इसलिए स्वाद को चखता नहीं, और चमड़ी नहीं है मेरे, इसलिए स्पर्श कर सकता नहीं हूँ किसी पदार्थ को। आहाहा! वह विषय का सेवन करने गया था। **न तो पहले कभी सुना है...** हों! पूर्व काल की बात करते हैं। अनंत-अनंतकाल गया कभी सुनने में आया नहीं।

राग से आत्मा भिन्न है यह बात जीवों ने सुनी नहीं है। दुःख के काल में दुःख का भोक्ता नहीं है आत्मा। यह बात सुनी नहीं है। नया आयुष्य बंधता है, तब नए आयुष्य के कर्म को बाँधने वाला आत्मा नहीं है। और बंधता है, उसमें निमित्तपना भी आत्मा का नहीं है। ऐसी बात उसने सुनी नहीं है। आहाहा!

न पहले कभी परिचय में आया है..., यह आत्मतत्व परिचय में, अनुभव में आया नहीं। **और न पहले कभी अनुभव में आया है।** आत्मा का स्वरुप अनुभव में आया नहीं। करना और भोगना, करना और भोगना। करना... कुछ करना तो चाहिए न, पुरुषार्थ तो करना चाहिए न। आहाहा! किन्तु आत्मा को जानना, अनुभवना, वही सम्यक पुरुषार्थ है।

वह जयपुर के विद्वान ने पूछा था, विद्यार्थी था बेचारा, पुरुषार्थ की व्याख्या क्या? यहाँ। मैंने कहा शुद्धात्मा को लक्ष्य में लेकर उसका अनुभव करना, उसका नाम पुरुषार्थ कहलाता है। **इसलिए भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं है।** आया था न मूल में.. **ण सुलहो विहतस्स** गुरुदेव यह वाक्य बोलते हैं। सुलभ नहीं है। पुण्य-पाप से भिन्न आत्मा है ये बात प्रगट होनी, प्राप्त होनी असाधारण है, सुलभ नहीं है। अशक्य नहीं है। **सुलभ नहीं** शब्द का प्रयोग किया मतलब दुर्लभ है, दुर्लभ है।

मुमुक्षुः- अलभ्य नहीं है।

उत्तरः- अलभ्य नहीं है, लभ्य है।

भावार्थः- इस लोक में सर्व जीव संसाररूपी चक्र पर चढ़कर पंच परावर्तन रूप भ्रमण करते हैं। वहाँ उन्हें मोहकर्मोदयरुपी पिशाच के द्वारा जोता जाता है,... भूत आया था न भूत.. वो ये। **पिशाच**- उसकी उपमा देते हैं। **इसलिए वें विषयों की तृष्णारुपी दाह से पीड़ित होते हैं;** विषयों को जानने की इच्छा होती ही रहती है। इन विषय और कषाय की व्याख्या की है मोक्षमार्ग प्रकाशक में; विषय अर्थात् पर को जानने की इच्छा। कषाय मतलब कषाय अनुसार करने की इच्छा। विषय और कषाय। जानने कि इच्छा और करने की इच्छा। जानने कि इच्छा होती है, वो विषय का सेवन करता है और करने की इच्छा होती है, वो कषाय का सेवन करता है। विषय-कषाय की व्याख्या बहुत सुन्दर की है।

जयसेनाचार्य भगवान विषय-कषाय शब्द बहुत उपयोग करते हैं जब तब। **इसलिए वें विषयों**

की तृष्णारुपी दाह से पीड़ित होते हैं; और उस दाह का इलाज इन्द्रियों के रूपादि विषयों को जानकार... देखो! स्पष्ट किया ये, **इसलिए वें... इसलिए... इलाज इन्द्रियों के रूपादि...**, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्द। **रूपादि विषयों को जानकार उनकी ओर दौड़ते हैं;** आहाहा! उसमें जुड़ जाते हैं। उयोग उसमें जुड़ता है। उपयोग आत्मा में जुड़ना चाहिए उसके बदले पर के लक्ष्य में चला गया। आहाहा! इसलिए जाननहार जानने में आता है, वास्तव में पर जानने में नहीं आता- इसमें विषय को जीतने की बात है।

मुमुक्षुः- जीतने की बात है।

उत्तरः- 'आत्मा वास्तव में पर को जानता नहीं'- इसमें विषयों को जीतने का बोध समाया हुआ है

मुमुक्षुः- हाँ जी! सही है।

उत्तरः- और वास्तव में आत्मा अकर्ता है, इसलिए कर्ता नहीं- ये कषाय जीतने का बोध है। विषय और कषाय जीते बिना सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। और बाद में अस्थिरता के विषय और कषाय, वें कर्ता के कर्म में नहीं जाते किन्तु ज्ञाता के ज्ञान में ज्ञेय में चले जाते हैं। बाद में अस्थिरता से शास्त्र सुनने की इच्छा होती है, प्रतिमा के दर्शन करने की इच्छा होती है। परन्तु अज्ञानमय इच्छा का अभाव है। मंदिर जाकर दर्शन करने की इच्छा हुई, वह विषय है। छूट नहीं है उसकी।

मुमुक्षुः- नहीं नहीं।

उत्तरः- किन्तु, टिका नहीं जाता साधक से तो इसप्रकार की अस्थिरता की इच्छा उत्पन्न होती है। अबुद्धिपूर्वक इच्छा उत्पन्न होती है। बुद्धिपूर्वक नहीं है। वो एकत्वबुद्धि नहीं है।

मुमुक्षुः- हाँ, मतलब अबुद्धिपूर्वक।

उत्तरः- इसलिए अबुद्धिपूर्वक कहलाता है, ऐसा। स्वयं इच्छा को जानता है पर उस इच्छा की इच्छा नहीं है। उससे मुझे लाभ होगा, मैं मंदिर जाऊं तो मुझे धर्म होगा- ये बुद्धि मिथ्यात्व की चली गई। अंदर स्वरुप में टिका नहीं जाता और अभी इन्द्रियज्ञान को..., इन्द्रियज्ञान को जीत लिया है अर्थात् इन्द्रियज्ञान का स्वामीपना छूट गया परन्तु इन्द्रियज्ञान छूटा नहीं अभी। इसलिए वह इन्द्रियज्ञान अपने खेल करता है।

अनादिकाल की भेद वासित बुद्धि है न अभी। क्षायिक केवलज्ञान नहीं होता तब तक ऐसा होता रहता है। आहाहा! पर को जानने की इच्छा होती है वह विषय है, उसमें ठगा गया। पर को मैं जानता नहीं- इसमें विषयों पर जीत हो जाएगी। और मैं पर का कर्ता नहीं हूँ- इसमें कषाय पर जीत हो जाएगी। यह विषय और कषाय को जीतने की चाबी और कला है, बहन!

मुमुक्षुः- यह मंत्र है विषय और कषाय को जीतने का।

उत्तरः- जीतने का मंत्र है। यह मंत्र जो है वह स्टीकर में लिखा हुआ है।

मुमुक्षुः- हाँ, सुवर्ण अक्षर में लिखा हुआ है।

उत्तरः- सुवर्ण अक्षर में लिखा हुआ है। "मैं जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं" इसमें कषाय पर जीत हो जाती है। और "वास्तव में जाननहार जानने में आता है और वास्तव में पर जानने में नहीं

आता" इसमें विषय पर जीत हो जाती है। आहाहा! ये दो बात ही हैं। ये दो ही बात हैं। अनादी की ये दो बात हैं। शास्त्र का आधार मिला न! विषय और कषाय को जीतो। पर को जानता नहीं उसमें विषय पर जीत हो जाती है। पर का मैं कर्ता नहीं हूँ, राग का कर्ता नहीं हूँ, इसमें कषाय पर जीत हो जाती है। आहाहा!

मुमुक्षुः- सही है, बहुत सुन्दर। एकदम सही बात है।

उत्तरः- और विषय को जीते बिना अनुभव होता नहीं।

मुमुक्षुः- होता नहीं।

उत्तरः- और कषाय को जीते बिना अनुभव होता नहीं। उसको जीतने के दो प्रकार हैं। आहाहा!

मुमुक्षुः- पर को जानना बंद नहीं करेगा तब तक अनुभव नहीं होगा।

उत्तरः- हाँ.. तब तक वो विषय नहीं अटकेगा। और करने का अभिप्राय नहीं छूटेगा तब तक कषाय नहीं छूटेंगी। करने का अभिप्राय छूटने पर कषाय का अभाव हो जाता है। फिर कषाय होती हैं, आहाहा! वह तो उनका ज्ञाता रहता है, उनका कर्ता बनता नहीं। रागी तो पुद्गल है। आहाहा! ये विषय-कषाय को जीतने का स्टीकर में से निकला लो...हें। उस स्टीकर में दो ही मंत्र हैं।

मुमुक्षुः- दो ही मंत्र हैं।

उत्तरः- विषय को जीतने का और कषाय को जीतने का।

मुमुक्षुः- विषय-कषाय को जीतना यह ही धर्म है।

उत्तरः- हाँ... "जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता" इसमें विषय पर जीत हो जाती है।

मुमुक्षुः- सही।

उत्तरः- और, "जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं" आहाहा! एक में जीव का वास्तविक स्वरुप लक्ष्य में आता है और जो वास्तविक स्वरुप लक्ष्य में आया वह अनुभव में आता है। इसलिए संवर होता है।

मुमुक्षुः- संवर होता है।

उत्तरः- "जाननहार हूँ और करनेवाला नहीं"- ये द्रव्य का निश्चय है। "जाननहार जानने में आता है वास्तव में पर जानने में नहीं आता"- ये ज्ञान की पर्याय का निश्चय है। दोनो बात आगम से प्रसिद्ध हैं। आहाहा! **इन्द्रियों के रूपादि विषयों को जानकार** उसमें से निकला ये सब। जानने की इच्छा। **उनकी ओर दौड़ते हैं; तथा परस्पर भी विषयों का ही उपदेश करते हैं।** आहाहा! आत्मा जाननेवाला है। पर को जानना तो चाहिए न, जानना तो स्वभाव है, आहाहा! वह विषयों से व्यावृत्त होता नहीं। आहाहा! विषयों को जीता जा सकता नहीं उसमें। बहुत भरा है हों!

परस्पर भी विषयों का ही उपदेश करते हैं। ऐसा। कि जानना तो चाहिए न! जाना हुआ तो प्रयोजनवान है न! पर्याय तो है न! पर्याय अवस्तु थोड़ी है, जाननी तो चाहिए न! समझ में आया? आहाहा! वह विषय को जीत सकता नहीं। विषय के आधीन हुआ बावला है, विषय के आधीन हुआ,

जानने के बहाने के नीचे बावला, और करने के बहाने के नीचे भी बावला हो गया है, पागल मूर्ख, मूढ़ है, मोही है, अज्ञानी है।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम् ।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ।। ६२।।

उसमें ऐसा लिखा है कि 'मैं परभाव को करता हूँ' (ऐसा माने) वह जीव मूढ़ है, मोही है, अज्ञानी है। तीन शब्द उपयोग किये हैं। करता हूँ और जानता हूँ, दोनों समान दोष हैं।

मुमुक्षुः- सही, एकदम सही।

उत्तरः- आहाहा! कि नैमित्तिकभूत तेरा ज्ञान जानने में आता है। क्रोध तुझे जानने में नहीं आता। क्रोध तो भिन्न है, तुझे कहाँ से ज्ञात हो? उसमें तन्मय होता नहीं तू। आहाहा! नैमित्तिकभूत ज्ञान में तन्मय हुआ अर्थात् आत्मा को जानने पर क्रोध भिन्न है ऐसा जानने में आता है। ज्ञान को जानने पर ज्ञेय भिन्न हैं ऐसा ज्ञात होगा। ज्ञान के ऊपर नजर रखते हुए नैमित्तिक ज्ञान की पर्याय को जानने पर निमित्तभूत ज्ञेय भिन्न हैं, ऐसा तुझे ज्ञात होगा।

मुमुक्षुः- सही एकदम सही।

मुमुक्षुः- जैसे ज्ञान को जानने पर ज्ञानी अभिन्नपने जानने में आता है, ऐसे ही ज्ञान को जानने पर सभी ज्ञेय- क्रोधादि भिन्न हैं, ऐसा जानने में आता है।

उत्तरः- ऐसा जानने में आता है। लोकालोक भिन्न हैं ऐसा ज्ञात हो जाता है तुझे। आहाहा! स्वरुप को छोड़े बिना और परपदार्थ का लक्ष्य किये बिना परपदार्थ जानने में आते हैं। उसका नाम वह ज्ञाता हुआ कहलाता है। परपदार्थ के लक्ष्य से ज्ञाता नहीं हुआ जाता।

मुमुक्षुः- नहीं हुआ जाता।

उत्तरः- वह तो विषय-कषाय की प्रवृत्ति हुई वह तो। उसमें ज्ञाता कहाँ से हुआ? आहा! संतों के दो शब्द, विषय और कषाय..., हम मोरबी गए थे तब बहुत इसकी चर्चा की थी। यहाँ मूल तो मैं स्वाध्याय करता था। स्वाध्याय करते हुए विषय-कषाय का बहुत विचार आया। ओहोहो! यह सुन्दर बात की है। मोरबी में खूब उसका स्पष्टीकरण किया। विषय और कषाय का स्पष्टीकरण। वह आज फिर से याद आया। स्मरण हुआ वापस।

मुमुक्षुः- सूत्र में घटाया।

मुमुक्षुः- "मैं जाननहार हूँ करनेवाला नहीं। जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता"- उसमें घटाया विषय-कषाय को।

उत्तरः- हाँ, उसमें ही।

मुमुक्षुः- उसमें से निकला ये।

उत्तरः- उसमें से निकला। उस मंत्र में ही हैं दोनों बात। कि मैं पर को जानता नहीं, उसमें विषय पर जीत हो जाएगी और करता नहीं उसमें कषाय पर जीत हो जाएगी। मोह पर जीत हो जाएगी। उसमें मोह के नाश का उपाय है।

इसप्रकार...,इसप्रकार काम...अर्थात् (विषयों की इच्छा), जानने की इच्छा। विषयों को जानने

की इच्छा उसका नाम काम है। **तथा भोग...** मतलब उनको- विषयों को भोगने की इच्छा। दोनों में इच्छा लेनी। जानने की इच्छा और भोगने की इच्छा। इन दोनों **की कथा तो..** आहाहा! अनंत बार दो का भाव.. **अनंत बार सुनी, परिचय में प्राप्त की और उसी का अनुभव किया, इसलिए वह सुलभ है। किन्तु सर्व परद्रव्यों से भिन्न...** आहाहा!

पर्याय मात्र परद्रव्य उससे भिन्न है आत्मा। वो परद्रव्य है। उससे भिन्न **एक चैतन्यचमत्कारस्वरुप अपने आत्मा की कथा का ज्ञान...** अर्थात् भाव का ज्ञान। **अपने को तो अपने से कभी नहीं हुआ,...** पूर्व की बात कर रहे हैं न! **और जिन्हें वह ज्ञान हुआ है...**, पर से भिन्न आत्मा का अनुभव **उनकी कभी सेवा नहीं की;** सेवा मतलब परिचय किया नहीं और उनके ऊपर श्रद्धा रखकर सुना नहीं। वह उनके ऊपर श्रद्धा रखे न, तब उनको निमित्त कहा जाता है। तब उसकी योग्यता का पलटा उसप्रकार का सहज आता है।

श्रद्धापूर्वक सुनता है न, उन पर विश्वास रखकर सुनता है न, उनके ऊपर विश्वास- वह इन्डाइरेक्ट आत्मा पर विश्वास किया उसने। सर्वज्ञ के ऊपर विश्वास वह (स्वयं के) आत्मा पर विश्वास, ज्ञानी पर विश्वास वह स्वयं के आत्मा पर विश्वास आया। एक बार परीक्षा करना कि यह ज्ञानी है या नहीं? परीक्षा करने की छूट है। एक बार परीक्षा हो जाये (कि) यह ज्ञानी है, बस। फिर शंका-आशंका नहीं होती। आहाहा!

ज्ञानी के प्रति निःशंकता एक बड़ा अपेक्षित गुण है। है व्यवहार किन्तु निश्चय के अनुकूल व्यवहार है। अभी इस काल में ऐसे श्रद्धालु जीव कम हैं। बिलकुल शुद्ध। **किन्तु सर्व परद्रव्यों से भिन्न एक चैतन्यचमत्कारस्वरुप अपने आत्मा की कथा का ज्ञान अपने को तो अपने से कभी नहीं हुआ,... और जिन्हें वह ज्ञान हुआ है उनकी कभी सेवा नहीं की;** उनका परिचय नहीं किया ऐसा। समागम नहीं किया।

श्रीमद्जी ने सत्समागम पर बहुत वजन दिया है। सत्समागम के दो प्रकार हैं। सत् चित् आत्मा है उसका समागम किया नहीं, (यह) निश्चय। और जिन्होंने आत्मा को जाना उनका परिचय भी किया नहीं, वो व्यवहार। **इसलिए उसकी कथा न तो कभी सुनी, न उसका परिचय किया और न उसका अनुभव किया। इसलिए उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं, दुर्लभ है।** आहाहा!

अब कहते हैं कि वह **सुलभ नहीं दुर्लभ है...**, किन्तु मैं ऐसे एकत्व आत्मा की बात तुम्हें कहूँगा। **अब आचार्य कहते हैं कि इसीलिये...** उसको परिचय नहीं है, सुना नहीं है, अनुभव नहीं है। **इसीलिये जीवों को उस भिन्न आत्मा का एकत्व...** अर्थात् एकपना **बतलाते हैं:-** इसमें एकत्व को दर्शाते हैं ऐसा कहा। फिर एकत्व-विभक्त शब्द जोड़ेंगे। अभी तो मैंने एकत्व दर्शाया।

मुमुक्षुः- एकत्व की उपलब्धि सुलभ नहीं है न।

उत्तरः- सुलभ नहीं है। लिखा है न ऊपर। नीचे लिखा है, **दर्शाऊँ एक विभक्त को** जो अंदर है वही उसका शीर्षक रखा।

दर्शाऊँ एक विभक्त को, आत्मा तने निज विभव से।
दर्शाऊँ तो करना प्रमाण, न छल ग्रहो स्खलना बने।।५।।

एकत्व आत्मा को बताने का मैंने व्यवसाय किया है। आहाहा! अब धीरे, धीरे, धीरे, धीरे, धीरे चढ़ती हुई दशा से, अब आता है। समयसार शुरू होनेवाला है। उसकी पूर्व भूमिका बाँधते हैं। मैं क्या दर्शाऊँगा? कि एकत्व आत्मा को दर्शाऊँगा। इसमें अकेला एक विभक्त ऐसा। विभक्त मतलब अलग, ऐसे आत्मा की बात मैं दर्शाऊँगा। बाद में अस्ति-नास्ति से दो बात, एकत्व और विभक्त की बात करेंगे। वह छट्टी गाथा में आयेगा। पाँचवी गाथा में आया, लो! एकत्व विभक्त। देखो! बहन! इसमें, उसमें नहीं है। हरिगीत में नहीं है। हरिगीत में नहीं है ये। उसमें है। अन्वयार्थ में है, देखो! पाँचवी गाथा में **तं एयत्तविहत्तं** संस्कृत में है देखो।

मुमुक्षुः- है न!

उत्तरः- है। **तं एयत्तविहत्तं** एकत्व और विभक्त शब्द पड़ा है।

मुमुक्षुः- उसमें हरिगीत में है न, हरिगीत में भी है भाई, एक विभक्त अर्थात् एकत्व।

उत्तरः- हाँ, ठीक है। एक अर्थात् एकत्व सही है। पर यह शब्द बहुत अच्छा है।

मुमुक्षुः- बहुत अच्छा है।

उत्तरः- यह शब्द बहुत अच्छा है। एकत्व और विभक्त, यें स्पष्ट हैं दोनों।

मुमुक्षुः- संस्कृत की गाथा में भी है।

उत्तरः- इसमें देखो **तं एयत्तविहत्तं** संस्कृत का। मैं गाथा का अर्थ करता हूँ। **अर्थ**, टीका से पहले। टीका से पहले, **[तम्]** अर्थात् **उस**। '**[एकत्वविभक्तं] एकत्व-विभक्त आत्मा को** ऐसा। भेदज्ञान शुरू हुआ यहाँ से। मैं एकत्व-विभक्त आत्मा को कहूँगा। एकत्व की सिद्धि विभक्त से होती है। अस्ति-नास्ति अनेकांत, यह अनेकांत का स्वरुप है। यह नय सप्तभंगी है। फूलचंदजी सिद्धांत शास्त्री ने इसका स्पष्टीकरण अच्छा किया है। उनका नयचक्र है छोटा।

मुमुक्षुः- जैनतत्व मीमांसा में है।

उत्तरः- जैनतत्व मीमांसा में! समझ गए? एक प्रमाण सप्तभंगी अलग और नय सप्तभंगी अलग। और आचार्य भगवान ने यहाँ नय सप्तभंगी से बात शुरू की है। नय सप्तभंगी में अनंत गुणों से एकपना और अनंत पर्याय से विभक्तपना। कोई पर्याय बाकी नहीं। क्योंकि श्रद्धा का विषय देना है। ज्ञान के विषय तक आया और प्रमाण सप्तभंगी तक आया कि स्व-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उसमें पर-द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की नास्ति (है)। मतलब यहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय आया किन्तु वह श्रद्धा का विषय नहीं है, ज्ञान का विषय है। और ज्ञान के विषय में से श्रद्धा का विषय निकालना चाहिए। मतलब प्रमाण में से जो निश्चयनय निकालता है वह जिनवचन में (कुशल है)। वह ये बात आई।

अब हम गहराई में आ रहे हैं। अब इस समयसार की जो गहराई है उसमें हम आ गए हैं, समझ गए? अभी तक वो प्रमाण का द्रव्य दिया उन्होंने, सात बोल से प्रमाण का द्रव्य दिया। वह ज्ञेयप्रधान कथन है। ज्ञानप्रधान कथन है। प्रमाणज्ञान का विषय आया। प्रमाणज्ञान के विषय में द्रव्य-पर्याय दोनों हैं। कर्म और नोकर्म वें तो एकदम भिन्न हैं, समझ गए? अब प्रमाणज्ञान के विषय में भी निर्विकारी और विकारी दो पर्याय ली। क्योंकि पहले कहा है कि ऐसा आत्मा को अनादिकाल से अनुभव नहीं है। बंध की कथा उसने जानी है। इसलिए वें भी प्रमत्त और अप्रमत्त दोनों ले लेंगे। विकार-

अविकार से रहित, ऐसे।

देखो! **एकत्वविभक्त आत्मा को...**, स्व से एकत्व और पर से विभक्त, (अर्थात्) भिन्न। दूसरी रीति से कहें तो स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता। **मैं आत्मा के निज वैभव से दिखाता हूँ;** डंके की चोट पर कहते हैं कि मैंने आत्मा को देखा है, दर्शन किये हैं और आत्मा के ऊपर लक्ष्य रखकर मैं आत्मा की बात करता हूँ। स्वयं स्वयं के अनुभव की साक्षी दी। मैंने सुना है और शास्त्र लिखता हूँ, ऐसा न कहकर... फिर स्वयं टीकाकार कहेंगे व्यवहार की बात।

स्वयं तो निश्चय का धमाका किया। मुझे आत्मा का अनुभव हो गया है। बेन, स्वयं धमाका किया। निज वैभव से मैं कहता हूँ। आत्मा का स्वरुप मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है, अनुभव कर रहा हूँ, अनुभव मुझे चालू है, ऐसा कहते हैं। चालू अनुभव में मेरी कलम चलती है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षुः- एकदम सही। बहुत सुन्दर।

उत्तरः- सीधी निश्चय की ही बात की। मैंने सर्वज्ञ की परंपरा में, मेरे गुरु ने कहा और मैंने सुना और मुझे आत्मा का ज्ञान हुआ है, ऐसा नहीं। व्यवहार की बात को गौण करके निश्चय की बात की। अब निश्चय की बात उन्होंने की तो अमृतचन्द्राचार्य ने व्यवहार जोड़ दिया।

मुमुक्षुः- हाँ, है तो ऐसे ही।

उत्तरः- सर्वज्ञ की परंपरा, और मेरे गुरु पर्यंत, और उनकी कृपा से, और मुझे शुद्ध आत्मा का उपदेश मिला और मैंने अनुभव किया। **एकत्व-विभक्त आत्मा को मैं आत्मा के निज वैभव से...** आहाहा! मेरा निज वैभव तो आनंद का अनुभव, वह निज वैभव है। **दिखाता हूँ;** मैं दिखाता हूँ, ऐसा। तुझे हथेली में दिखाता हूँ कि ये आत्मा का स्वरुप है। देख दिखाता हूँ, आँख खोलकर रखना रूचि की। रूचि की आँख खुली रखना। दूसरा तुझे कुछ करना नहीं है। **यदि मैं दिखाऊँ तो...**, ऐसा। मैं दिखाऊं तो तुझे दिखेगा। दिखेगा तो अनुभव से प्रमाण करना। सुनकर प्रमाण मत करना।

मुमुक्षुः- नहीं, नहीं।

उत्तरः- सुनकर प्रमाण नहीं हो सकता। देखो, सुनकर प्रमाण नहीं होता क्योंकि इन्द्रियज्ञान में प्रमाणता नहीं है। क्योंकि इन्द्रियज्ञान में प्रत्यक्ष आत्मा का अनुभव नहीं है। इसलिए तू अनुभव से प्रमाण करना। आहाहा! अनुभवी की बात अनुभव से प्रमाण होती है। शक्कर मीठी है। जिसने शक्कर खाई वो कहता है कि शक्कर मीठी है। देखो! यह शक्कर? तो कहता है हाँ, मीठी है। नहीं...नहीं।

दूसरा अभी आयेगा फिटकरी का ढेला लेकर इससे अच्छा, तो तू उसे शक्कर मान लेगा। पर मैं तुझे शक्कर बताता हूँ मीठी है। तू जीभ पर रखकर प्रमाण करना। फिर ठग आएगा फिटकरी का ढेला लेकर तो धोखा नहीं खाएगा तू। आहाहा! ऐसी संधि की है, गुरु-शिष्य की संधि की है। इसमें ऐसा रहस्य है कि यह समयसार जो भाव से पढ़ेगा उसको अनुभव होगा।

मुमुक्षुः- होगा ही।

उत्तरः- यह बात है। वह.. वह स्वयं को.. स्वयं को दूसरे जीवों का ज्ञान हो गया है। भविष्य के पात्र जीवों का ज्ञान हो गया है। नहीं होता?

मुमुक्षुः- हाँ होता है न साहेब।

उत्तर:- भवान्तर का स्वयं का और दूसरों का ज्ञान होता है, ज्ञानी को। आहाहा! **दिखाऊं तो प्रमाण करना, और यदि कहीं चूक जाऊं...** मतलब किसी व्याकरण में, मात्रा में, शब्द की परंपरा में, कहीं शाब्दिक दोष हों तो वह तू ग्रहण मत करना। अनुभव प्रधान शास्त्र है। अनुभव से प्रमाण करना। **तो छल नहीं ग्रहण करना।** ऐसा कहा। इसमें तुम व्याकरण और मात्रा और पद की, ये और वो आदि बहुत प्रकार होते हैं। उसके ऊपर लक्ष्य मत करना। शब्द म्लेच्छ मत होना, शब्द म्लेच्छ मत होना, नहीं तो रह जाएगा।

लो, पांचवी गाथा शुरू होगी। टाइम हो गया।

मैं अपने निज वैभव से लिखता हूँ शास्त्र। आहाहा!

मुमुक्षुः- अनुभव चालू है।

उत्तर:- चालू है यह। लिखने की क्रिया जड़ की है। विकल्प उठता है वह जड़ की क्रिया है। आहाहा! उससे भिन्न जाननहार जानने में आता है। क्योंकि जो एक बार अनुभव में आया वह **ज्ञातः** ज्ञायकपने जानने में आया वह तो सर्व अवस्था में ज्ञायकपने, जाननहारपने ज्ञात हो रहा है। आहाहा! वह जानना छूटता नहीं और जानने में आ रहा है इसलिए आनंद आ रहा है। क्योंकि ज्ञान और अतीन्द्रिय आनंद के अविनाभावी संबंध है। विषय-कषाय की बात, आज अच्छी निकली।

मुमुक्षुः- अच्छी निकली।

उत्तर: पर को मैं जानता नहीं। भाई! यह बात सत्य है। विषय को जीतने का तुझे प्रकार बताते हैं। तू विषय को नहीं जीत सका.. **मैं पर को जानता हूँ**- वो तो विषय आधीन हो गया, वो तो है अनंतकाल से। आहाहा! वह तो काम-भोग-बंधन की कथा है।

मुमुक्षुः- दुःखरूप है।

उत्तर:- दुःखरूप है। मैं पर को जानता हूँ और पर को करता हूँ, ये काम-भोग-बंधन की कथा है।

मुमुक्षुः- इसमें ही अनंत परावर्तन हुए हैं।

उत्तर:- यह स्टीकर है न!

मुमुक्षुः- जी भाई, मुक्ति का कारण है।

उत्तर:- ये बस। महामंत्र है! आज यह बात उसमें घटित की न हमने। घटित हुई, एकदम घटित हुई, बिलकुल शुद्ध घटित हुई हों!

मुमुक्षुः- बिलकुल शुद्ध पूरी। सहजपने ही घटी इसमें।

उत्तर:- हाँ, सहजपने घटी। कोई प्रकार उसका लेकर नहीं। यह आया इसमें से। आहाहा! विषयों की तरफ झुकता है। दाह होती है इसलिए दाह मिटाने के लिए विषयों की तरफ झुकता है। आहाहा! जानने की इच्छा बंद कर दे।

टोडरमल साहब ने बहुत अच्छी बात की है। विषय और कषाय की व्याख्या की है। पर को जानने की इच्छा, वह विषय। और कषाय अनुसार करने की इच्छा, वह कषाय। विषय और कषाय की व्याख्या की। इच्छा है, दोनों में इच्छा है। करने की इच्छा और जानने की इच्छा। यथार्थपने जो पर को

जानता नहीं, (उसमें) विषय पर जीत होती है।

मुमुक्षुः- विषय पर जीत होती है।

उत्तरः- विषय पर जीत हो जाने पर कषाय पर भी जीत हो जाएगी। क्योंकि जानता नहीं, तो करना? इसको मैं जानता नहीं तो इसको करने की कहाँ बात रही। राग को जानता ही नहीं तो राग को करने की बात कहाँ रही। आहाहा! जाने हुए का श्रद्धान होता है। जानना बंद होगा तो श्रद्धा नहीं होगी, मिथ्या। यह बात उन्होंने ली है कि इन्द्रियज्ञान जिसको जानता है उसे अपना मानता है। यहाँ से संसार खड़ा हुआ।

मुमुक्षुः- मोक्षमार्ग प्रकाशक में लिखा है।

उत्तरः- मोक्षमार्गप्रकाशक की ही बात कर रहा हूँ। बात उन्होंने बहुत अच्छी ली है। इन्द्रियज्ञान अमूर्तिक ऐसे आत्मा को तो जानता नहीं और जिसको जानता है मूर्तिक आदि देहादि को, उनको अपना माने बिना रहता नहीं। बहुत अच्छा वाक्य है। सुनेहरा!

बोलो परम उपकारी पूज्य सद्गुरुदेव की जय हो!